❑ डॉ0 भानीराम

महावीर का आरोग्य : मेरा रोग

दो ही वर्ष पूर्व वह स्वस्थ एवं सुदर्शन लड़का महावीर के नाम पर चल रहे गणों और गच्छों में से किसी एक में दीक्षित हुआ था और कल रात वह पूछ रहा था कि मेरी चिकित्सा पद्धति में लीवर बढ़ना रोकने तथा बढ़ी हुई लीवर को सामान्य करने की कोई औषधि है या नहीं। जहां वह दीक्षित बालक बैठा था, वहीं शीर्ष-स्थान पर भगवान महावीर का ध्यान-मग्न विग्रह चित्रित था। इतना स्वस्थ, सुदर्शन, सबल एवं दीप्तिवान शरीर और वह भी बारह वर्षों के उन रोमांचक तपों तथा देव, मनुष्य कृत उपद्रवों के उपरांत भी। आरोग्य, मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक, के साक्षात् विग्रह के गण में दीक्षित इस मुनि की, और ऐसे ही हजारों-हजारों मुनियों की यह अवस्था क्यों ? वह क्या आरोग्य मंत्र था जो भगवान जानते थे और हम या तो जानते नहीं, अथवा उसका पालन नहीं करते ?

आगमों में भगवान महावीर ने रोग के नौ कारण बताये हैं, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारे लिए परम चिंतनीय हैं-

(1) अत्यधिक आहार करना।
(2) अत्यधिक भूखे रहना।
(3) अत्यधिक विषय सेवन।
(4) आवेगों का दमन।
(5) मल के वेग को रोकना।
(6) मूत्र के वेग को रोकना।
(7) अत्यधिक विचरण (विहार या यात्रा) करना।
(8) एकदम विचरण न करना।
(9) तीव्र कषाय यथा क्रोध, घृणा।

प्रतिवर्ष उपवास-पर्वों में मैं हजारों ऐसे बालकों, स्त्री-पुरुषों को उपवास करते देखता हूं जो पेट के घाव (अल्सर) के रोगी हैं और जिनके लिए तीन घंटे से ज्यादा आहार रहित होने से अम्ल बढ़कर पित्त का वमन होता है। धर्म-ध्यान के स्थान पर आर्त्त-ध्यान होता है। ऐसे तप को भगवान ने बालपन या अज्ञान तप कहा है-

मास मास में जो मूढ़
कुश की नोक पर टिके इतना ही
भोजन करता है - धर्म की
सोलहवीं कला भी नहीं जानता।

महावीर प्रणीत बारह तपों में उपवास या अनशन तो प्रथम एवं गौण है तथा स्वाध्याय अंतिम तथा श्रेष्ठ है। उपवास के लिए भी भगवान का विधान स्पष्ट है, इन सावधानियों में-

(1) इन्द्रियों की क्रिया क्षीण या विकृत न हो।
(2) कोई शारीरिक रोग न बढ़े।
(3) मन में आर्त्त-भाव न आये।

महावीर की विधि से भिक्षाचरी करने वाले भिक्षु या भोजन करने वाले गृहस्थ का प्रतिदिन ही एक आनन्दपूर्ण उपवास है, जहां रोग के लिए स्थान ही नहीं है। भिक्षु को दिन में एक बार भिक्षाचरी करनी है और एक बार ही उसका उपयोग करना है- वह भी दिन के तीसरे प्रहर में। प्रथम प्रहर में कुछ नहीं खाना है। दूसरे प्रहर में गृहस्थ तथा उनके भृत्य (नौकर-चाकर) आदि भोजन करते हैं, उसके बाद बचा हुआ भिक्षुओं तथा श्वान आदि पशुओं को दे दिया जाता है। उसके बाद जो प्रांत (बचा हुआ) तथा रुक्ष (नीरस) जिसमें घी, तेल, मिर्च-मसाले नहीं हों, ऐसा भोजन साधु दिन के तीसरे प्रहर गवेषणा करता है - द्वारस्थ भिखारियों तथा श्वान आदि पशुओं का भाग मिल जाने और उनके चले जाने के बाद। उस प्रांत और रुक्ष (रस रहित, वसा रहित) भोजन को वह मधु-घृत की तरह ग्रहण करता है। प्रायः दो घंटे तक भोजन आमाशय से पचकर लीवर से बड़ी आंत में चला जाता है। भोजन के मध्य में अल्प जल लेना हितकर है, किन्तु उसके उपरांत कम से कम घंटे भर जल न लेना सुपाचन के लिए आवश्यक है। दिन का चौथा प्रहर जल-सेवन तथा पाचन के लिए बच जाता है। आहार के तत्काल बाद लिया हुआ विपुल मात्रा का जल ही लीवर तथा पाचन-अंगों के रोगों को जन्म देता है। महावीर की भिक्षा-प्रणाली में इसकी अपेक्षा ही नहीं। मल-मूत्र के आवेगों को रोकना महावीर की दृष्टि में शरीर के साथ अपराध है। भगवान का विधान यहां तक है कि भिक्षाचरी करते समय भी मल या मूत्र का वेग हो तो साधु को भिक्षा-पात्रादि किसी गृहस्थ के स्थान पर रख कर प्रासुक भूमि की गवेषणा करना चाहिए तथा आवेगों का विरेचन होने के पश्चात् वहां से पात्रादि लेकर भिक्षाचरी के लिए आगे बढ़ना चाहिए। मल के आवेग को रोकने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण ही बवासीर, कब्जियत, नासूर और भगन्दर आदि रोग होते हैं। मूत्र के आवेगों को रोकने से मूत्राशय के अनेक रोग होते हैं। महावीर के विधान में उच्चार निरोध (मल रोकना) तथा प्रस्राव-निरोध (मूत्र रोकना) सर्वथा निषिद्ध है। इसके औचित्य की पुष्टि प्राचीन आयुर्वेद तथा वर्तमान चिकित्सा पद्धति में सर्वत्र मिलती है। संभवत: मेरा बाल मुनि-मित्र किसी ऐसे गण या गच्छ में रहा होगा जहां नाम तो महावीर का लिया जाता है लेकिन आहार-विहार की विधि शहरी-जीवन से प्रभावित है। जहां प्रात: 'बेड-टी' की गवेषणा होती है। फिर नास्ते की गवेषणा, दूसरे प्रहर में भोजन की गवेषणा, तीसरे प्रहर में चाय-नास्ते की गवेषणा तथा अंतिम प्रहर में पुन: सांध्य-भोजन की गवेषणा होती है। फिर सूर्यास्त से पूर्व पात्र भर-भर कर जल पीने का क्रम चलता है। भोजन के बाद तत्काल और गले तक जल भर कर फिर सांध्य-आराधना तथा प्रवचनादि होते हैं और निद्रा तो रात्रि के दूसरे प्रहर में ही संभव है। जहां शरीर के आवेगों से अधिक महत्व प्रवचनों तथा लोक-संपर्क को दिया जाता है, वहां लीवर तथा पाचन प्रणाली के रोग होंगे ही क्योंकि भगवान के प्रणीत विधान का नित्य उल्लंघन होता है। भोजन के बारे में भगवान शाकाहार-मांसाहार के विवाद में नहीं गये हैं, लेकिन उनकी प्ररूपणा में हिंसा का निषेध होने से भोजन का विकल्प शाकाहार ही शेष रहता है। चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है। मांसाहारी जानवरों के दांतों की बनावट तथा पाचन-संस्थान की संरचना में शाकाहारियों से सर्वथा विपरीत शारीरिक संस्थान होता है। इस दृष्टि से मनुष्य शाकाहारी वर्ग में आता है। मांसाहार उसके लिए नैसर्गिक नहीं है। मांसाहार में यूरिक एसिड ज्यादा होता है जो गठिया जैसे रोगों को जन्म देता है। साथ ही उसमें वसा की मात्रा इतनी ज्यादा होती है कि वह हृदय, लीवर और तिल्ली सबके लिए हानिकारक है। संसार के सबसे बड़े मांसाहारी देश अमेरिका में हृदय रोग से मृत्यु की दर सबसे ज्यादा है, साथ ही यकृत, लीवर कैंसर तथा पित्ताशय की पथरी के रोग ज्यादा पाये गये हैं। प्रकृति प्रदत्त फल, दूध, हरी सब्जियां, सूखे फल और मेवे, दालें आदि मानव शरीर के लिए पोषक हैं। महावीर जैसी ही बात नाथपंथी सिद्ध मुनि श्री गोरख नाथ की वाणी में भी मिलती है-

आसन दृढ़ आहार दृढ़ जे निद्रा दृढ़ होई,
गोरख कहे सुनो रे पूतां मरे न बूढ़ा होई।

आसन का अर्थ पतंजलि की दृष्टि में सुखासन है जिसमें चांचल्य त्याग कर व्यक्ति देह स्थिर कर दीर्घ समय तक बैठ सके। आहार की दृढ़ता सात्विकता, पोषकता तथा पवित्रता में है। निद्रा की दृढ़ता स्वप्न रहित प्रगाढ़ निद्रा में है जिसे योग निद्रा कहा गया है।

भोजन के अलावा चर्या तथा भाव भी स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महावीर ने इसे जागरुकता (जयं) पूर्वक चलना, उठना, बैठना, बोलना, आहार-विहार आदि करना कहा है। गोरखनाथ भी इसी प्रकार का मंतव्य प्रकट करते हैं-

हबकि न बोलना, ठबकि न चलना, धीरे रखना पांव,
गरब न करना, सहजे रहना, भणंत गोरख राव।

भगवान बुद्ध का मध्यम मार्ग, जिसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा गया है, इसी ओर इंगित करता है। भगवद्गीता में भी तामसिक, राजसिक व सात्विक आहारों का विवरण देकर उनकी तुलना की गयी है तथा शरीर और मन पर उनके प्रभाव का विवेचन है जो पठनीय तथा मननीय है। लाओ-त्से ने ताओ-दर्शन में भी इसी मध्यम मार्ग की चर्चा की है।

अंत में मुझे विजयवाड़ा के एक ईसाई सर्जन की बात याद आती है। मेरे एक मित्र की पत्नी को ऑपरेशन के समय दूसरे का रक्त दिया गया था। उसने चेतावनी दी थी कि जब तक यह पराया रक्त शरीर में है। उसके स्वभाव तथा व्यवहार में अप्राकृतिकता आ सकती है। मेरे पूछने पर कि यदि पराये रक्त का यह प्रभाव है तो पराये मांस का क्या प्रभाव होता होगा जो लाखों आदमी खाते हैं। उसने स्पष्ट कहा- पशु होकर ही कोई पशु को खा सकता है और पशु को खाने से पशुता आना अनिवार्य है। वर्तमान युग की दारुण हिंसा का यही कारण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org